कक्षा में मेरे प्रयोग

पूर्वा अग्रवाल

अक्सर ऐसा देखने में आता है कि स्कूलों में प्रक्रिया के बजाय परिणाम या उत्पाद को पुरस्कृत किया जाता है। आकलन का आखिरी पर्चा प्रगति का ब्यौरा होने की बजाय क्षमता का ब्यौरा बन जाता है। कभी-कभी जो ग़लत हो रहा है वह, जो हो सकता है, उसे प्रभावित कर देता है या उस पर हावी हो जाता है। यदि कोई बच्चा पढ़ नहीं रहा है तो हम कहते हैं कि बच्चा पढ़ नहीं सकता है। अधिकतर यह ग़लत निष्कर्ष, उस धारणा से उपजता है जो अभिभावक या शिक्षक 'क्षमता' के बारे में रखते हैं। हो सकता है कि कुछ लोगों की यह धारणा हो कि कुछ बच्चे सीख नहीं सकते हैं या वे किसी विषय-विशेष को नहीं सीख सकते हैं या किसी विशेष तरीक़े से नहीं सीख सकते या यह कि कुछ बच्चे बस सीखना ही नहीं चाहते।

मैंने ऐसा कोई विचार मन में नहीं रखा। कम से कम मुझे लगता है कि मैंने ऐसा नहीं किया। जब मैंने अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय से शिक्षा में एमए किया तो बच्चों की सीखने की अक्षमता से जुड़ी जो भी धारणाएँ मुझमें थीं, उन पर लगातार प्रश्न चिह्न लगे। दो वर्षों के दौरान बाल विकास पर विभिन्न दृष्टिकोणों का अध्ययन करते हुए मैंने जो जानकारी हासिल की, वह यह है कि शिक्षण को सीखने का मतलब इस बात की समझ विकसित करना है कि बच्चे क्यों नहीं सीखते या सीखने में असफल क्यों होते हैं। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ जिससे मुझे विश्वास हो जाए कि बच्चे सीख नहीं सकते। लेकिन अच्छा इरादा रखने वाले हितधारक, जो पुख़्ता तौर पर यह मानते हैं कि हर बच्चा सीख सकता है, उनके लिए भी इस विश्वास को व्यावहारिक रूप देना मुश्किल होता है। कभी-कभी हमारे पास नहीं हो सकता को हो सकता है में बदलने के लिए पर्याप्त साधन नहीं होते। कभी-कभी हममें बच्चे के सन्दर्भ के बारे में पर्याप्त अन्तर्दृष्टि नहीं होती है और हम बच्चे के न सीख पाने के मूल कारण तक नहीं पहुँच पाते और ग़लती से यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि बच्चा सीख ही नहीं सकता।

मैं इस लेख में उन प्रयासों पर फिर से नज़र डालना चाहती हूँ जिनका प्रयोग मैंने अपनी कक्षा में किया। यह प्रयास मैंने स्कूल में और स्कूल के बाहर बच्चों के साथ कार्य करते हुए किए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि हर बच्चा सीखने की प्रक्रिया में इस तरह से शामिल हो कि वह सीख सके।

समूहीकरण और विभेदित अधिगम

एक ही शिक्षण शैली सभी बच्चों के लिए सही नहीं होती और ऐसा करने से कुछ बच्चों को काफ़ी नुक़सान होता है इसलिए अलग-अलग और रचनात्मक तरीक़े से बच्चों को समूहबद्ध करना उनके लिए लाभकारी होता है। समूह बनाते समय मैं प्रत्येक समूह के भीतर विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापों के लिए विकल्प भी प्रदान करती थी।

इस तरह के एक प्रयास के दौरान तमिलनाडु के एक स्कूल में कक्षा पाँचवीं के बच्चों ने स्कूल कैंटीन में प्रदर्शित करने के लिए भोजन और पोषण पर कविताएँ लिखीं। उन्होंने समूहों में काम किया और उस समूह के भीतर, एक सदस्य उस विचार के बारे में सोचता, दूसरा चित्र बनाता, तीसरा कविता बनाता और चौथा उसे लिख देता, प्रत्येक बच्चा इन कार्यों को बारी-बारी से करता जैसे प्रवेश-द्वार के लिए स्वागत सन्देश लिखना। इस प्रक्रिया के माध्यम से सत्र के अन्त तक सभी बच्चों ने स्कूल कैंटीन, बगीचे, प्रवेश-द्वार या कक्षा के लिए एक कविता तो लिख ही ली थी।

छठी कक्षा में हमने सौर प्रणाली के बारे में एक पुस्तक बनाई। प्रत्येक बच्चा अपनी पसन्द के विषय पर लिख सकता था। कुछ बच्चों ने एक तथ्यात्मक अंश लिखने की सोची, कुछ ने एक विवरण। कुछ ने एक काल्पनिक कहानी लिखी। एक बच्चे ने परिचय लिखा। कुछ बच्चे लिखना ही नहीं चाहते थे तो उन्होंने पुस्तक के लिए चित्र बनाए और उनको लेबल किया और उनमें से एक ने शीर्षक और सारांश लिखा। इस तरह प्रत्येक बच्चा सीखने की प्रक्रिया में शामिल हुआ और अपने स्तर के अनुसार लेखन कौशलों का प्रयोग किया। लेकिन अन्त में जो चीज़ बनकर तैयार हुई वह संयुक्त रूप से बनाई गई थी। इस प्रक्रिया में यह बात सुनिश्चित की गई थी कि प्रत्येक बच्चा सीखने की प्रक्रिया में भाग ले। इससे यह विश्वास भी दृढ़ हुआ कि हर बच्चा न केवल सीख सकता था बल्कि उसने सीखा भी और उसका यह सीखना साफ़ नज़र आता था।

बैठने की लचीली व्यवस्था

कभी-कभी कक्षा में सिर्फ़ बैठने की व्यवस्था बदल देने से ही सुगमकर्ता यह सुनिश्चित करने में सक्षम हो जाता है कि हर बच्चा सीख रहा है। मुझे विशेष रूप से बच्चों की गोलाकार

बैठक व्यवस्था का प्रयोग करना पसन्द है क्योंकि इससे सभी बच्चे न केवल सुगमकर्ता को देख पाते हैं बल्कि एक-दूसरे को भी आसानी से देख सकते हैं। एक-दूसरे को देखने की यह सरल-सी बात समावेशन और भागीदारी को सक्षम करने में बहुत कारगर होती है। कहानी सुनाते समय मैंने बच्चों को झुण्ड में बैठाने की भी कोशिश की है। इस व्यवस्था में बच्चों को लगता है कि वे किसी महत्त्वपूर्ण व गुप्त गतिविधि का हिस्सा हैं और जो बच्चे कक्षा में 'गड़बड़ी' करते हैं या जिन बच्चों का ध्यान भटक जाता है, उन्हें यह व्यवस्था आमतौर पर कक्षा में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित करती है। मैंने यह भी देखा है कि यह व्यवस्था कक्षा के प्रति अपनत्व और टीम-भावना पैदा करती है, जिससे कम प्रेरित बच्चे भी सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय भाग लेने लगते हैं।

भागीदारी के अलावा मैंने यह भी पाया कि बैठने की व्यवस्था बदलने से मुझे ऐसे पैटर्न और लेबल से बचने में मदद मिली जो कक्षाओं के दौरान बन सकते हैं। बच्चों को उनके निर्धारित स्थानों और पैटर्न से अलग करने पर मुझे उन्हें पूरी तरह से एक नई रोशनी में देखने का अवसर मिला। मुझे ऐसा लगता है कि इसने निषेधकारी बन्धनों को तोड़ दिया। हैरानी की बात है कि इसने बच्चों के बीच की सीमाओं को भी तोड़ा, विशेष रूप से जेंडर और समूहों की सीमाओं को भी जैसे कि पीछे बैठने वाले बच्चे।

पाठ्यक्रम के साथ व्यक्तिगत जुड़ाव स्थापित करना

मैं वर्तमान में जिस स्कूल में काम करती हूँ, उसके संस्थापक ने याद दिलाया कि हर बच्चा एक सन्दर्भ है। वैसे तो मुझे लगता है कि यह बात पूरी तरह से सच है, लेकिन यह भी सच है कि शिक्षा व्यवस्था प्रत्येक सन्दर्भ के लिए ज़िम्मेदार नहीं हो सकती। स्थानीय सन्दर्भ का ध्यान रखना भी पाठ्यक्रम और संसाधन निर्माण के लिए एक बड़ी एवं अनसुलझी चुनौती बन जाती है। ऐसे मामले में एक ऐसी व्यवस्था, जो हर बच्चे के लिए ज़िम्मेदार हो, शिक्षा की सर्वश्रेष्ठ परी-कथा से कम नहीं होगी!

फिर भी, शिक्षण के दिन-प्रतिदिन के काम में यह इतना दुष्प्राप्य भी नहीं लगता है। हालाँकि यह अभी भी एक बड़ी चुनौती है, लेकिन अगर उन तरीक़ों के बारे में सोचा जाए जिनमें व्यक्तिगत कहानियों, इतिहास, बारीकियों, रुचियों और अन्य बातों को कक्षा में शामिल किया जा सके तो काफ़ी हद तक यह बात सुनिश्चित हो सकेगी कि हर बच्चा सीख पा रहा है। मेरे अनुभव के ऐसे ही कुछ क़िस्से अभी भी मेरे साथ हैं।

इनमें से एक क़िस्सा शिक्षा-नाटक की कक्षा से सम्बन्धित है। यह कक्षा स्कूल के बाहर आयोजित की गई थी। एक बच्चा 'क' हिस्सा लेने से साफ़ मना कर रहा था और दीवार के सहारे जा खड़ा हुआ।

हमने पूर्व-तैयारी का एक कार्यक्रम बनाया, जिसमें तय किया कि हर बच्चा दीवार के सहारे खड़े होने के साथ शुरुआत करेगा, दीवार से अपने दिन के बारे में बात करेगा और फिर हम कक्षा शुरू होने से पहले गोल घेरे में आ जाएँगे। तो इस प्रकार 'क' का व्यवहार (दीवार के सहारे खड़ा होना) सामान्य, स्वीकृत, साझा और मज़ेदार हो गया। यह पहला क़दम था। दूसरी बात जिसने इसे सफल बनाया वह यह थी कि मैंने उसे मजबूर नहीं किया और न ही उसकी हँसी उड़ाई लेकिन साथ ही उसे अनदेखा भी नहीं किया और न ही उसे छूट दी।

धीरे-धीरे उसे लगने लगा कि वह भी यह कर सकता है और हम उस पर भरोसा कर रहे हैं। धीरे-धीरे वह भी मुख्य पाठ का हिस्सा बनने लगा। हमने भी अन्ततः दीवार पर कार्य शुरू करना बन्द कर दिया और उसके स्थान पर अन्य रणनीतियाँ/गतिविधियाँ शुरू कर दीं।

मेरा एक अन्य अनुभव छठी कक्षा के एक बच्चे के साथ था जिसने सामाजिक विज्ञान की कक्षा में भाग लेने से मना कर दिया था। मैंने कक्षा के बाद उससे उसकी रुचियों और उसके जीवन के बारे में बात करना शुरू किया। मुझे पता चला कि उसे पत्थर इकट्ठा करना पसन्द है। मैंने उससे पाषाण युग के बारे में बात करनी शुरू की। मैंने उससे यह कल्पना करने को कहा कि वह पाषाण युग का है। मैंने उसके पत्थर के संग्रह का उपयोग यह देखने के लिए किया कि उनकी सहायता से किस तरह के उपकरण बनाए जा सकते हैं। इससे उसे शुरुआती प्रेरणा मिली और उसे महसूस हुआ कि कक्षा के विषय को उसके व्यक्तिगत जीवन से कैसे जोड़ा जा सकता है।

पर इस तरह के दृष्टिकोण की अपनी समस्याएँ हैं। एक तो यह कि शिक्षक के पास आमतौर पर प्रत्येक बच्चे के साथ व्यक्तिगत रूप से जुड़ने का समय या स्थान नहीं होता और कई बार उसके पास ऐसे समावेशन के लिए अपेक्षित लचीलेपन और स्वायत्तता की कमी भी हो सकती है।

मैंने देखा है कि खेल के समय, बस में जाते समय, प्रतीक्षा करते समय बच्चों से बातें करना और जब भी अवसर मिले तब उनके जीवन और सन्दर्भ के बारे में जानने से शिक्षण-अभ्यास और बच्चों के साथ बातचीत में मदद मिल सकती है। हल्का-सा ही सही लेकिन, कक्षा में बच्चों के जीवन की वास्तविकताओं का उल्लेख करने से, उन्हें शामिल करने में और उनके सन्दर्भ से जुड़ाव न रखने वाले पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाने में मदद मिलती है। मैं कक्षा में उदाहरण देने के लिए बच्चों के जीवन के किस्सों और अनुभवों का उपयोग करती थी। जब मैं रीडिंग कॉम्प्रिहेंशन पैसेज तैयार करती या वर्कशीट और आकलन के प्रश्न बनाती तो मैं बच्चों के बारे में मिलने वाले हर विवरण का उपयोग करती।

मैंने जिन बातों पर यहाँ चिन्तन किया है वे केवल ऐसे कुछ अभ्यास हैं जिनका मैंने उपयोग किया और जो काफ़ी कारगर रहे हैं। उनमें चुनौतियाँ और व्यावहारिक समस्याएँ हैं। लेकिन मेरे लिए, यह सवाल कि क्या प्रत्येक बच्चा सीख सकता है या नहीं इसका जवाब अन्ततः इस बात पर टिका है कि क्या उसके जीवन से जुड़े वयस्क (माता-पिता, शिक्षक, स्कूल के प्रधानाध्यापक, पाठ्यपुस्तक लेखक या कोई अन्य हितधारक) यह मानते हैं कि बच्चा सीख सकता है। यहाँ मेरा अर्थ किसी व्यक्तिगत या भावुक विश्वास से नहीं है बल्कि, हर बच्चा सीख सकता है और हर बच्चा सब कुछ सीख सकता है, इस बात पर सुविज्ञ और परखे हुए विश्वास से है। जो चीज़ भिन्न हो सकती है और होती भी है, वह है सीखने की अवस्था, लेकिन सीखना हो सकता है।

जैसा कि मैंने उल्लेख किया है, कई मायनों में, शिक्षा व्यवस्था कुछ बच्चों को विफल करती है और वे नहीं सीख पाते हैं। सीखने की इस असफलता को बड़ी आसानी से सीखने की अक्षमता माना जा सकता है। और जब तक हम इस भ्रामक निष्कर्ष के प्रति सतर्क रहेंगे और इस बात पर वास्तव में विश्वास करेंगे कि यदि सही सन्दर्भ, स्थितियाँ और प्रक्रियाएँ हों तो हर बच्चा सीख सकता है तो निस्सन्देह हमें कक्षाओं को ऐसा बनाने के तरीक़े भी मिलेंगे जिनसे हम यह सुनिश्चित कर सकें कि हर बच्चा सीख सके।

पूर्वा अग्रवाल अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की पूर्व छात्रा हैं। यहाँ से उन्होंने एमए, शिक्षा की उपाधि प्राप्त की है। उनकी राय है कि शिक्षा ने उन्हें एक शिक्षक के रूप में अपनी यात्रा शुरू करने के लिए जड़ें और पंख दिए। वे वर्तमान में बेंगलूरु के स्पार्कलिंग माइंड्ज़ ग्लोबल स्कूल में अध्यापन करती हैं। वहाँ वे अपने दो बच्चों के साथ रहती हैं। वह उस प्रक्रिया का सुगमीकरण करना पसन्द करती हैं जिससे उभरते हुए पाठक और लेखक स्वतंत्र रूप से कार्य करना सीखते हैं। वे बच्चों के लिए पुस्तकें लिखती हैं। उनकी पहली पुस्तक 'व्हाट् मेक्स मी, मी' हाल ही में तूलिका बुक्स द्वारा प्रकाशित हुई है। उनसे poorva.agarwal@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल